ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का पाक्षिक मुखपत्र

अगस्त 2019 (प्रथम)

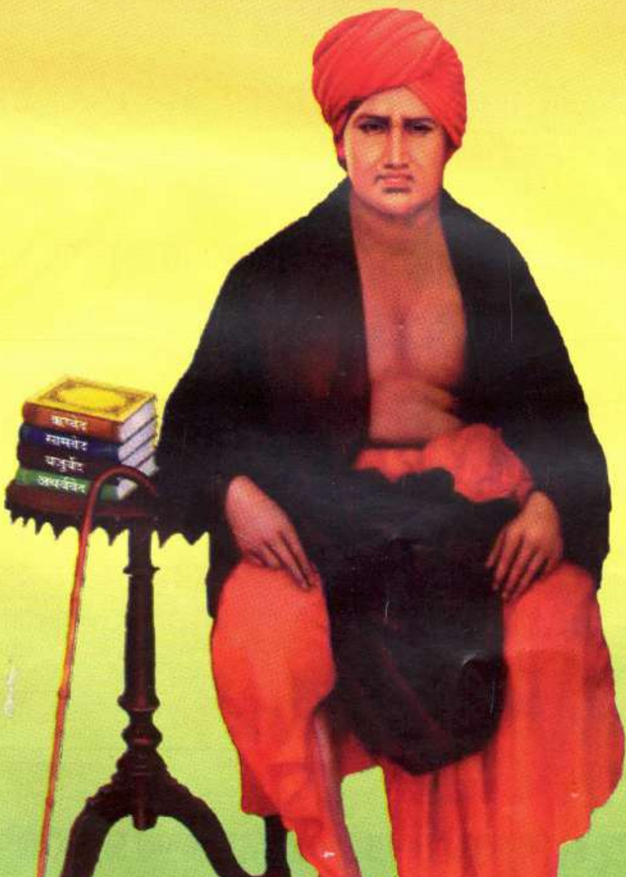

Email : aryapsharyana@yahoo.in

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

Visit us : www.apsharyana.org

सार्वजनिक सूचना

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के सभी प्रतिनिधियों (सदस्यों) को सूचित किया जाता है कि सभा का त्रिवार्षिक निर्वाचन दिसम्बर 2019 में होना प्रस्तावित है। चुनावी प्रक्रिया के अनुसार सभी प्रतिनिधि फार्मों की जांच कार्यकारिणी द्वारा गठित उपसमिति के द्वारा की गई जांच के बाद प्रतिनिधि सूचि (वोटर लिस्ट) को अन्तिम रूप दिया गया। इस सन्दर्भ में किसी भी प्रतिनिधि को किसी भी प्रकार की कोई शिकायत एवं आपत्ति हो तो एक सप्ताह के अन्दर दिनांक 19.08.2019 तक सभा कार्यालय में लिखित रूप में दे सकते हैं। इसके पश्चात् किसी भी शिकायत एवं आपत्ति को स्वीकार नहीं किया जाएगा।

उमेद शर्मा
मंत्री, आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा,
दयानन्द मठ रोहतक

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के त्रिवार्षिक चुनाव 2019 की प्रतिनिधि सूची (वोटर लिस्ट) आप सभा की वेबसाईट पर भी देख सकते हैं - **www.apsharyana.org**

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,120
विक्रम संवत् 2076
दयानन्दाब्द 196

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
की
मुख्य-पत्रिका

वर्ष 15 अंक 11

सम्पादक :
उमेद शर्मा

पत्रिका-शुल्क

देश में
वार्षिक-200 रुपये आजीवन-2000 रुपये

विदेश में
वार्षिक शुल्क 100 डॉलर
आजीवन 400 डॉलर

पत्रिका का स्वामित्व
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि०)
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ,
गोहाना रोड, रोहतक-124001

सम्पादक-मण्डल
1. आचार्य सोमदेव
2. डॉ० जगदेव विद्यालंकार
3. श्री चन्द्रभान सैनी

सम्पादकीय विभाग
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक
सम्पर्क सूत्र-
चलभाष :-
मो० 89013 87993, 7082783793

॥ ओ३म् ॥

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चिन्तन एवं वैदिक जीवन मूल्यों की पाक्षिक पत्रिका

आर्य प्रतिनिधि

अगस्त, 2019 (प्रथम)

1 से 15 अगस्त, 2019 तक

इस अंक में....

1. श्रावणी और स्वाध्याय 2
2. जिज्ञासा-विमर्श (जीवात्मा) 3
3. आर्यसमाज एवं स्वतन्त्रता संग्राम 5
4. महात्मा गान्धी तथा आर्यसमाज 8
5. श्रावणी का अपना महत्त्व 10
6. जीवन का प्रथम प्रश्न 11
7. ज्ञानकण–सत्य और सेवा 12
8. जिसको खोजा, क्या उसे पाया? 13
9. एकता में अनेकता 13
10. शैदा-ए-वतन अपनी हस्ती भी मिटा बैठा 14
11. शिक्षा और विद्या 15
12. शेषभाग-विषय 16

सूचना

सभी आर्यसमाजों को, आर्य शिक्षण संस्थाओं को सूचित किया जाता है कि अपने सभी प्रकार के प्रचार कार्यक्रमों का विवरण 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका में छापने के लिए भेजें। साथ ही विद्वानों, लेखकों, बुद्धिजीवियों से आग्रह है कि वे अपने लेख, कविता आदि निम्न ई-मेल अथवा पते पर भेजें।

सम्पादक 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक-124001
E-mail : aryapsharyana@yahoo.in
Website : www.apsharyana.org

श्रावणी और स्वाध्याय

❑ उमेद शर्मा, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ, रोहतक

श्रावणी आर्यों के प्रसिद्ध पर्वों में से एक महान् पर्व है। यह वैदिक पर्व है। इसका सीधा सम्बन्ध वेद के अध्यापन और अध्ययन करने वालों से है। श्रावणी का पर्व वेद के स्वाध्याय का मुख्य पर्व प्राचीन काल से माना जाता है। इसका पूरा नाम श्रावणी उपाकर्म (ऋषि तर्पण) है। संभव है वेद के श्रवण करने से ही यह नाम रखा गया हो किन्तु श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा को यह पर्व होता है अत: यह श्रावणी पर्व है। इसी श्रावणी पूर्णिमा के आधार पर ही इस मास का नाम भी श्रावण मास है। चारों वर्णों में प्रथम वर्ण (ब्राह्मण) का वेद का अध्ययन-अध्यापन करना मुख्य माना गया है। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:' इस निरुक्त वचन से यही स्पष्ट होता है। मन्त्रार्थ दर्शन के कारण ही ऋषि का नाम प्रसिद्ध हुआ। इस पावन पर्व पर वेद का स्वाध्याय प्रारम्भ करने से इसका नाम ऋषि तर्पण प्रसिद्ध हुआ। जिस वस्तु से जिसकी तृप्ति (तर्पण) होती है उसी से उसका नाम पड़ता है। क्योंकि इस पर्व से वेद का स्वाध्याय प्रारम्भ होता है अत: ऋषि तर्पण नाम इस पर्व का प्रसिद्ध हो गया। इसी पर्व पर स्वाध्याय से ऋषियों का तर्पण किया जाता है अर्थात् विप्र ब्राह्मण आदि श्रावणी पूर्णिमा से प्रारम्भ करके साढ़े चार मास तक वेदाध्ययन करें। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में ग्रीष्म अवकाश के बाद विद्यालयों का प्रारम्भ श्रावणी से ही होता था। इस समय वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाती है। ऋषि महर्षि अपने आश्रमों से पहाड़ों व कंदराओं को छोड़कर गांवों व शहरों में आ जाते थे। गृहस्थियों के घरों में जा-जाकर वेदप्रचार करते थे। इस समय राजा-महाराजा भी अपने विजय अभियान को छोड़कर विश्राम करते थे क्योंकि सभी रास्ते पानी से भरे होते थे।

इस पर्व पर वेद के स्वाध्याय का बड़ा महत्त्व है। स्वाध्याय में प्रमाद का हमारे शास्त्रों में निषेध है। इसलिए कहा गया है कि स्वाध्याय का ज्ञान के परिवर्धन में बहुत महत्त्व है। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है। उसमें इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आती है और प्रज्ञा (बुद्धि) की अभिवृद्धि होती है। स्वाध्याय की उपयोगिता असाधारण एवं अद्‌भुत है। यह मानसिक आरोग्य एवं वैचारिक संवर्धन के लिए आवश्यक है, क्योंकि मन और विचार के शुद्ध परिष्कृत हुए बिना स्वस्थ शरीर एवं शालीन व्यवहार की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वाध्याय के द्वारा पहले मन स्वस्थ होता है, फिर जीवन। सोच-विचारकर तन्त्र में विकृति बनी रहने पर शारीरिक एवं व्यावहारिक परेशानियां तथा समस्याएं बनी रहती हैं। स्वाध्याय ही सबको ठीक करने के लिए सर्वप्रथम विचार तन्त्र को परिष्कृत एवं परिमार्जित करता है और अपने स्व और अस्तित्व का बोध कराता है। अत: आध्यात्मिक जगत् में इसे चिकित्सा का स्थान दिया गया है। इसलिए वेद स्वाध्याय का अत्यधिक महत्त्व है। जो वेद के स्वाध्याय को छोड़कर अन्य कर्मों में लगा रहता है वह परिवार सहित शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त व आचारहीन हो जाता है या आलस्य करता है अथवा दूषित अन्न खाता है ऐसा ब्राह्मण वर्ण आश्रम के धर्म से पतित माना जाता है। प्रसिद्ध ग्रन्थ योगदर्शन के नियमों में तो शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान कहकर स्वाध्याय को भी क्रियायोग बतलाया है। उपनिषदों में 'स्वाध्याय: परं तप:' कहा गया है। इस प्रकार जब विद्यार्थी गुरुकुल से विद्या पढ़कर समाज में जाना चाहता है तो उस समय समावर्तन संस्कार के अवसर पर आचार्य उपदेश देते हुए कहता है-'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमादितव्यम्'। अर्थात् हे युवक सांसारिक जीवन में भी स्वाध्याय और प्रवचन करने में भी आलस्य नहीं करना। इस प्रकार स्वाध्याय का अति महत्त्व है।

प्राचीन काल में भी इस देश का प्रत्येक मनुष्य स्वाध्याय में लीन रहते थे। इस कारण वह ज्ञान-विज्ञान कला-कौशल के क्षेत्र में निपुण था। इस प्रकार सभी वर्णों में विद्या की प्राप्ति होती थी। स्वाध्याय करने से ही चार प्रकार से विद्या की प्राप्ति भलीभांति होती थी। आगम काल (गुरुमुख से पढ़ना) स्वाध्याय काल, प्रवचन काल और व्यवहार काल में प्रयोग करने से मनुष्य को विद्वान् बनने के लिए वेद आदि शास्त्रों को ही पढ़ना चाहिए। मनुस्मृति के अनुसार वेद को ही परम शास्त्र माना है। चारों आश्रमों में धर्म के पालन के लिए स्वाध्याय जरूरी है। मनुष्य चाहे तो सब कार्य छोड़ दे

क्रमश: पृष्ठ 12 पर......

जिज्ञासा-विमर्श (जीवात्मा)

❑ आचार्य सोमदेव, ऋषि उद्यान, अजमेर

आपका उत्तर तो आ गया होगा। कुछ और प्रमाण आत्मा के परिच्छिन्न होने में लिखते हैं। मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट कहा–

'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः।' (मुं० 3.1.9)

अर्थात् यह अणु (परिच्छिन्न) आत्मा शुद्ध अन्तःकरण द्वारा जानने योग्य है।

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥

(अथर्व० 10.8.25)

अर्थात् जीवात्मा बाल से भी सूक्ष्म है और एक प्रकृति है जो दीखती नहीं। इन दोनों में जो व्याप्त देवता है, वही मुझे प्रिय है। इसी बात को श्वेताश्वतर में और स्पष्ट किया–

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

(श्वेता० 5.9)

बाल के अग्रभाग के सौ भाग किये जायें, फिर उनमें से एक भाग के सौ भाग किए जायें, उस एक भाग के बराबर जीव का परिमाण है और वह मुक्ति के लिए समर्थ है।

जिज्ञासा-2. जीव का शरीर में स्थान नियत है या बदलता रहता है?

–ज्ञानप्रकाश कुकरेजा, 736/8, अर्बन स्टेट, करनाल (हरयाणा) 132001

समाधान–इस विषय में ऐतरेय उपनिषद् में अलग-अलग स्थानों में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश समुल्लास आठ में लिखा है, ''जीव के जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिए स्थान विशेषों का निर्माण....।'' यह शास्त्रीय प्रमाणों और महर्षि की साक्षी से जीव का मुख्य स्थान हृदय प्रतीत होता है। जैसे–**'हृदि ह्येष आत्मा'** (प्रश्नो० 3.6) आत्मा का निवासस्थान हृदय है।

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं हृद्ययमिति।
तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवं वित्स्वर्गं लोकमेति॥

(छां० 8.3.3)

वह आत्मा हृदय में है। हृदय को हृदय कहते भी इसलिए हैं, क्योंकि हृदि+अयम्=वह हृदय में है। जो इस रहस्य को दिन-प्रतिदिन जान जाता है, वह उसे बाहर ढूंढ़ने के स्थान में हृदय के भीतर ढूंढ़ता है और वही मानो स्वर्ग को पा जाता है। इस प्रकार और भी अनेक प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं। महर्षि ने भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना के लिए हृदय देश ही उत्तम माना है।

जिज्ञासा-3.

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः, एतद्वै तत्॥

उपरोक्त वेदमन्त्र 'उपनिषद् प्रकाश' पृष्ठ 248 प्रकाशक-वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़ में दिया है तथा भावार्थ दिया है कि आत्मा, हृदय में छिपा रहता है। डॉक्टर शल्य क्रिया द्वारा हृदय को (बाईपास सर्जरी में) अलग कर देते हैं, फिर भी मनुष्य जीवित रहता है, कैसे? क्योंकि आत्मा तो उसमें है नहीं।

–कृष्ण गोपाल मेहरोत्रा आर्य, वार्ड नं० 1, रनकपुर, (चम्पावत) उत्तराखण्ड

समाधान–जो मन्त्र आपने उद्धृत किया है, वह वेदमंत्र नहीं है, अपितु कठोपनिषद् वल्ली चार का आठवां मन्त्र है। आपकी जिज्ञासा इस मन्त्र के भावार्थ में कहे गए ''आत्मा हृदय में छिपा रहता है।'' इस वाक्य के आधार पर है कि डॉक्टर द्वारा हृदय की शल्यक्रिया द्वारा शरीर से अलग कर देने पर भी मनुष्य जीवित कैसे रहता है? क्योंकि हृदय आत्मा का स्थान होने से हृदय के साथ-साथ शरीर से आत्मा हट गई (हृदय परिवर्तन करते हुए) इसमें यह समझना, जानना चाहिए कि जिस हृदय की डॉक्टर लोग शल्य क्रिया करते हैं, उसमें आत्मा नहीं रहती, वह आत्मा का निवास स्थान नहीं है, इसलिए शल्यक्रिया से हृदय अलग कर देने पर भी मनुष्य जीवित रहता है।

शास्त्र में जहाँ आत्मा का निवास स्थान हृदय आता है, वहाँ शरीर में रक्त को धक्का देने (पम्प करने) वाला अङ्ग नहीं लेना चाहिए, किन्तु इस विषय में जो महर्षि दयानन्द की मान्यता अनुसार हृदय प्रदेश लिखा है, वह लेना युक्त है,

लेना चाहिए। वह स्थान महर्षि ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका उपासना प्रकरण में लिखा है।

जिज्ञासा-4. 'जीवात्मा', 'जीव' और आत्मा-क्या ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं? यदि नहीं तो प्रत्येक की क्या परिभाषाएँ हैं?

-रमेश बंसल, 111/6, बीसलपुर प्रोजेक्ट कॉलोनी, टोंक रोड, देवली-304804 (राज०)

समाधान-जीव, आत्मा, जीवात्मा-ये तीनों एक अर्थ को ही कहने वाले हैं। जीव जो प्राणों को धारण करने वाला है, आत्मा-**अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति, अतति गच्छति शरीरान्तरं वा**-अर्थात् जो निरन्तर गतिशील है, कर्मफलों को प्राप्त करता है अथवा शरीरान्तर को प्राप्त होता है वह आत्मा कहाता है। ये सब बातें एक ही चेतन तत्त्व में घटित होती हैं। जब शरीर धारण करता है, तब जीव वा जीवात्मा और जब शरीर धारण नहीं किये हुए तब आत्मा, इस प्रकार विभाग की दृष्टि से देखना चाहें तो देख सकते हैं, अन्यथा तीनों ही पर्यायवाची शब्द हैं।

जिज्ञासा-5. आत्मा को निराकार माना गया है और वह है भी, किन्तु हमारे समाज के जुड़े साधकों में अणुरूप व केश (बाल) के दस हजारहवें भाग के उपमा के कारण साकार मानते हैं। साथ ही तर्क देते हैं कि निराकार परमात्मा में निराकार आत्मा कैसे रह सकता है तथा मृत्यु होती है तो उस निराकार आत्मा को निकलने के लिए रास्ता क्यों देखना पड़ता है? यदि वह निराकार है तो इसके लिए वे सिद्धान्त, तर्क, वेदमन्त्र, उपनिषद् के माध्यम से लिखित में चाहते हैं, जिससे अपने पक्ष को प्रस्तुत किया जा सके। कुछ विद्वान् सुख-दु:ख आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं मानते हैं। कृपया, आत्मा के स्वरूप को शुद्ध रूप में बताएँ?

-डॉ० अशोक कुमार गुप्त, ग्रा०पो० चाँदपुरी, बेहट रोड, वेद मन्दिर, सहारनपुर (उ.प्र.)

समाधान-आत्मा निराकार है, यह युक्ति तर्क व प्रमाणों से सिद्ध है, इसको आप भी मानते हैं, किन्तु कुछ साधकों की मान्यता है कि आत्मा साकार है, इस आधार पर आपने जिज्ञासा भेजी है।

इस विषय में कुछ लिखने से पहले हम साकार मानने वालों से कुछ प्रतिप्रश्न कर रहे हैं कि ऐसा कहाँ लिखा है कि आत्मा साकार है? साकार मानने वाले, साकार की परिभाषा क्या मानते हैं? साकार कहते किसे हैं? कहाँ लिखा है कि निराकार में निराकार नहीं रह सकता? बिना प्रमाण के बात कहना, समाज में भ्रम फैलाना है।

जो वस्तु अनेक अवयवों से मिलकर बनी हो और जिसमें रूप गुण हो, उसको साकार कहते हैं, अर्थात् जो आंखों से दिखाई देवे, वह साकार कहाता है। इस परिभाषा के अनुसार न तो आत्मा अनेक अवयवों से मिलकर बना और न ही उसमें रूप गुण है, इसलिए आत्मा साकार सिद्ध नहीं हो रहा है। यदि साकार की परिभाषा यह करें कि जो पदार्थ इन्द्रियों से प्रतीत होता है, वह साकार कहाता है, तो भी आत्मा साकार सिद्ध नहीं हो रहा, क्योंकि वह गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द इन इन्द्रियों के विषयों से परे है, और भी यदि साकार की परिभाषा यह की जाये कि जो प्रकृति से बना है, वह साकार कहाता है, तो भी आत्मा साकार सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वह प्रकृति से भी नहीं बना, उसकी अपनी स्वतन्त्र चेतन सत्ता है।

शास्त्रों में ईश्वर को स्थान की दृष्टि से महत् परिमाण वाला और आत्मा को अणु परिमाण वाला कहा है। यहाँ परिमाण का अर्थ वैसा आकार कदापि नहीं है, जैसा अनेक अवयव मिलकर एक द्रव्य रूप आकार बनाते हैं। परिमाण का अर्थ यह है कि किसी पदार्थ की इयत्ता कितनी है, वह कितने स्थान में है, उसका घेरा कितना है? शास्त्र में जहाँ भी आत्मा को अणुरूप, अणुस्वरूप, अणुमात्र कहा है, वहाँ आत्मा के अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप को बताने के लिए है कि आत्मा अत्यल्प परिमाण वाला है। अणुरूप कहने से आत्मा का भौतिक द्रव्यों की भांति आकार नहीं मान सकते, न ही मानना चाहिए। हाँ, स्थान की दृष्टि से आत्मा इतने स्थान पर रहता है, इस रूप में उसका आकार कह सकते हैं, इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः चानन्त्याय कल्पते॥

इस उपनिषद् वचन में भी बाल (केश) के सौवें भाग के सौ खण्ड करें, उनमें से एक भाग जितना आत्मा है-यह कहना आत्मा के अत्यल्प परिमाण को दर्शाने के लिए ही है कि वह बहुत छोटा, अणु परिमाण वाला है। इस उपनिषद् वचन से, आत्मा साकार है-ऐसा अर्थ कहीं से भी नहीं निकल रहा।

आर्यसमाज एवं स्वतन्त्रता संग्राम

❑ कन्हैयालाल आर्य, उपप्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, रोहतक मो० 9911197073

महर्षि दयानन्द सरस्वती बहुमुखी क्रान्ति के अग्रदूत थे। महर्षि राष्ट्रभक्त ही नहीं विश्वप्रेमी थे। उनका राष्ट्रप्रेम विश्वप्रेम का साधक है बाधक नहीं। कोई भी राष्ट्र महर्षि दयानन्द प्रणीत राष्ट्ररक्षा के सिद्धान्तों से अपने आपको सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय और अखण्ड बना सकता है, यही महर्षि की विशेषता है।

हमारी जाति में कितने बड़े शूरवीर योद्धा, त्यागी व बलिदानी पुरुष एवं स्त्रियाँ हुई हैं और उनके भी त्याग के पीछे वैदिक संस्कृति व महर्षि दयानन्द जी का शंखनाद प्रेरणास्रोत है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश ने कितने ही वीरों को सर्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार किया है। आर्यवीरों का बलिदान ही इस देश की सम्प्रभुता को बनाये रखने में समर्थ हुआ है। शत-शत नमन उन आर्यवीरों को, उन माताओं और बहनों को तथा उन महान् पुरुषों को जिनके बलिदान और त्याग से एक स्वतन्त्रतारूपी उपवन आज भी हरा-भरा है।

सर्वस्व अर्पण करने वाले रणबाँकुरों को फाँसी का फन्दा चूमना पड़ा, अनेक यातनाओं को सहना पड़ा, माताओं की गोदियाँ सूनी हो, बहनों की राखियाँ भाइयों की कलाइयों की प्रतीक्षा करती रही, देवियों का शृंगार छिन गया परन्तु अन्ततः स्वतन्त्रता प्राप्त कर ही ली गई। इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति में आर्यसमाज के आर्यवीरों ने कितना बलिदान किया यह बात कोई निष्पक्ष इतिहासकार ही लिखेगा जिसे इस वास्तविकता का ज्ञान होगा। सत्यार्थ प्रकाश की प्रेरणा ने कितनों को उद्वेलित किया, कितनों को झिंझोड़कर रख दिया। अंग्रेज सरकार के प्रशासन में आर्यसमाज का सदस्य होना ही इस बात का प्रमाण था कि वह इन गोरों की सरकार का विरोधी था। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने राजस्थान में स्वदेशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से भी अच्छा होता है, इस मन्त्र का प्रवचन किया था। यह शब्द उस समय के आर्यों में ज्वाला बनकर उभरे थे।

आर्यजाति के जीवन में वह सबसे बड़ा भारी दुर्दिन था, जबकि योगिराज श्रीकृष्ण जी के लाख समझाने पर भी भरे दरबार में **'सूच्यग्रं नैव दास्यामि युद्धेन केशव'** ''हे कृष्ण! बिना युद्ध किये एक सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा'' की घोषणा करके राष्ट्रद्रोही, कुपथगामी दुर्योधन ने इस देश के लिए प्रलयंकर महाभारत के युद्ध की चिंगारियों को हवा दी थी। महर्षि दयानन्द जी ने दुर्योधन को इस कुकृत्य के लिए कुलघातक और कुलहत्यारा तक बताया है। उसी समय से उस राष्ट्र में सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य छिनकर दासता की दीनतामयी तथा दयनीय घड़ी आरम्भ हुई। ऐसी अवस्था में भारत किसी उद्धारक, अपने मृतप्रायः तन में संजीवनी धारक कुशल वैद्य की प्रतीक्षा में था, जो कि उसके समस्त दुःखों, क्लेशों का पूर्ण निदान करके सर्वविध स्वास्थ्यलाभ करा सके और उसके यथार्थ स्वरूप को दिखा सके। ऐसे सर्वथा विपदाच्छन्न कराल काल में भारत के कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने के अनन्तर भारत एवं विश्व के उद्धारार्थ ऋषि दयानन्द जी का प्रादुर्भाव हुआ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज एवं स्वाधीनता संग्राम-इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्यसमाज की स्थापना महर्षि दयानन्द जी ने 1875 में की थी, परन्तु उसकी भूमिका वह कई वर्षों से बना रहे थे। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार, जिसके सुदृढ़ दासता के लोहे के शिकंजे में पड़ा यह देश शताब्दियों से स्वतन्त्रता के लिए छटपटा रहा था, की घातक चालों के परिणाम स्वरूप यहाँ की जनता में उस समय उस शासन के विरुद्ध सर्वप्रथम तो शक्तिशाली विस्फोट हुआ था वही यही स्वाधीनता का प्रथम महान् संगम था, जिसे उन विदेशी शासकों ने प्रखर देशभक्तों को बदनाम कर असफल करने के लिए गदर संज्ञा प्रदान की।

अंग्रेजों के दासत्व के चोले को अपने कंधों से उतार फेंकने का दृढ़ निश्चय भारत की जनता कर चुकी थी परन्तु यह योजना तैयार कर उसे सफलता की ओर ले जाने वाले ऋषिवर दयानन्द सरस्वती, उनके विद्यादाता गुरु विरजानन्द सरस्वती तथा उनके गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी भी सम्मिलित थे, इस तथ्य की पुष्टि करते हुए स्वामी वेदानन्द सरस्वती जैसे महान् लेखक लिखते हैं-''विरजानन्द ने अपने प्रज्ञानेत्रों से साक्षात् कर लिया था कि भारत की दुर्दशा के प्रधान दो कारण हैं-एक अनार्षग्रन्थों का प्रसार और दूसरा विदेशी राज्य।'' आज ऐतिहासिक मुक्तकण्ठ से कहते हैं कि

विरजानन्द तथा उनके गुरु स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी ने इस संग्राम का प्रारम्भ कराया था। इसके पश्चात् वृद्ध पूर्णानन्द ने युवा बलिष्ठ दयानन्द को इस ओर प्रेरित किया। ऋषि दयानन्द जी ने अपने समवयस्क नाना धोधोपन्तराव जैसे क्रान्तियज्ञ के यजमान को प्रेरित किया। तभी नाना साहब के सैकड़ों सन्देश-वाहक साधु, फकीरों आदि के रूप में सभी दिशाओं में क्रान्ति का आरम्भ हो गया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती नाना साहब पेशवा के गुरु थे। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि यदि स्वामी दयानन्द न होते तो नाना साहब पेशवा ने 1857 की हार के पश्चात् आत्महत्या कर ली होती। ऋषि दयानन्द ने स्वामी पूर्णानन्द से ब्रिटिश अत्याचारों की हृदय विदारक कथा सुनकर किस प्रकार तात्यां टोपे और नाना साहब से निकट सम्पर्क स्थापित किया और किस प्रकार योजनाबद्ध रूप से क्रान्ति के उन नेताओं को संगठित करने का प्रयत्न किया, यह इतिहास का एक रोचक किन्तु अलिखित अध्याय है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जिन असाधारण विचारों से भारत के राजनैतिक वातावरण में एक अपूर्व हलचल उत्पन्न हुई तथा देशवासियों ने उनकी राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित हो, जिस प्रखरता के साथ उस दिशा में अपने चिन्तन को आगे बढ़ाया, उनमें से उनके प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास 8, 10, 11 ने राष्ट्र के नवयुवकों को बलिदान हेतु उद्यत किया। इसके साथ आर्याभिविनय के लेखन द्वारा भी प्रेरणा प्रदान की। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा संशोधित और परिवर्तित संस्करण उदयपुर आकर प्रकाशित कराना आरम्भ किया। वहाँ आपका सम्पर्क महाराणा सज्जनसिंह से हुआ। ऋषि जी के सम्पर्क में आकर महाराणा सज्जनसिंह पर इतना प्रभाव पड़ा कि सज्जनसिंह ने अंग्रेजों के नियमों को मानने से इंकार कर दिया। महर्षि दयानन्द को महाराणा सज्जनसिंह से बहुत-सी आशायें थी, परन्तु दुर्दैववश यौवन अवस्था में यह राष्ट्रभक्त संसार से विदा हो गया। तत्पश्चात् ऋषि जी ने उनके उत्तराधिकारी फतहसिंह जी को स्वाभिमान, प्रखर राष्ट्रवादी विचारों का बना दिया।

कांग्रेस का कार्यक्षेत्र महर्षि दयानन्द के संसर्ग से प्रखर देशभक्ति, स्वगौरव एवं स्वाभिमान का पाठ पढ़े हुए विशुद्ध एवं कट्टर देशभक्त आर्यसमाजियों के हाथ में आया तो उन्होंने अपने प्रभाव से उस विदेशी एवं गुप्त योजना रखने वाली कांग्रेस की विचारधारा एवं कार्यक्षेत्र तथा लक्ष्य को एक नया मोड़ दे दिया। ऋषि दयानन्द के जिन राजनैतिक शिष्यों ने कांग्रेस को राष्ट्रवाद एवं पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति की नई दिशा दिखाई उन व्यक्तियों में सबसे पूर्व तथा प्रमुख नाम श्री महादेव गोविन्द रानाडे का आता है। ये महर्षि दयानन्द सरस्वती के परम भक्तों में से थे। इसके आगे इस राजनैतिक शिष्य परम्परा में आने वाले महानुभावों ने उस अंकुर को सींच-सींचकर विशाल वटवृक्ष के रूप में परिणत कर दिया, ऋषि दयानन्द सरस्वती की इस देशभक्त परम्परा में महाशय रानाडे के पश्चात् उनके राजनैतिक शिष्य गोपालकृष्ण गोखले का नाम आता है। महात्मा गांधी गोखले को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। कहने का अभिप्राय यह है कि देशप्रेम की जो प्रबल गंगाधारा ऋषि दयानन्द सरस्वती रूपी हिमालय से प्रादुर्भूत हुई वह रानाडे और गोखले रूपी क्षेत्रों को सींचती हुई अन्त में महात्मा गांधी रूपी क्षेत्र में जाकर हरियाली उत्पन्न कर देने का कारण बनी। देशप्रेम की भावना का अधिक अंश महात्मा गांधी को उस शिष्य परम्परा से प्राप्त हुआ जिसके आदिम प्रवर्तक तथा आदिम आचार्य ऋषि दयानन्द सरस्वती थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों की छाप लगभग सभी स्वतन्त्रता सेनानियों पर किसी न किसी रूप में पड़ी है। हम यह देखते हैं कि ऋषि दयानन्द की छाप किन्हीं सज्जनों पर साक्षात् और किन्हीं पर परोक्ष रूप से पड़ी है जिन पर परोक्ष रूप में पड़ी है, उन सज्जनों में दादा भाई नौरोजी का नाम प्रमुखरूपेण मिलता है। सैनिक समाचार 20 अक्तूबर 1968 से भारत सरकार के सुरक्षा विभाग द्वारा प्रचारित एक लेख छपा वह इस प्रकार है-दादा भाई नौरोजी पहले सज्जन थे, जिन्होंने भारत पर अंग्रेजों के अधिकार जमाए रखने के विरुद्ध लिखा, वे पहले हिन्दुस्तानी थे, जिन्होंने शब्द (स्वराज्य, स्वशासन) प्रयुक्त किया। एक दिन लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने हैरान होकर देखा कि पारसी देशभक्त दादाभाई नैरोजी 'सत्यार्थ प्रकाश' के पन्ने पलट रहे हैं, आपने विनोद में पारसी देशभक्त से प्रश्न किया कि "क्या आप आर्यसमाजी बन गये?" "नहीं, मुझे स्वराज्य समर में स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ से भारी प्रेरणा प्राप्त होती है," दादाभाई ने उत्तर दिया।

महर्षि दयानन्द जी की शिष्य परम्परा बहुत लम्बी है जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द जी, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

जी, श्यामजीकृष्ण वर्मा, लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी, इन्द्र विद्यावाचस्पति, महाशय कृष्ण, महाशय वीरेन्द्र, सरदार अर्जुनसिंह, सरदार भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, सुखदेव, महात्मा आनन्द स्वामी तथा उनके पुत्र रणवीर जी, पं० मनसाराम वैदिक तोप, स्वामी बेधड़क जी, स्वामी रामेश्वरानन्द जी, वीर सावरकर, पं० दामोदर सातवलेकर जी, आचाय [illegible]नाथ जी, डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, डॉ० सत्यपाल, स्वामी ओमानन्द जी तथा अन्य असंख्य वीरों ने राष्ट्रीय यज्ञ में आहुति दी। चाहे असहयोग आन्दोलन हो, चाहे विदेशी वस्तुओं की होली जलाना तथा स्वदेशी का प्रचार हो, नमक आन्दोलन हो या 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन हो, आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द की मानस संस्था आर्यसमाज के रणबांकुरों ने अपने जीवन की आहुति दी। यूं तो आर्यसमाज के असंख्य सदस्यों ने राष्ट्रयज्ञ में अपना-अपना योगदान दिया, परन्तु देश की स्वाधीनता के प्रसंग में लिखते हुए भारत के प्रसिद्ध ओजस्वी वक्ता, अदम्य राष्ट्रप्रेमी कंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर को भूल जाना जीवित शहीदों के तप-त्याग के साथ क्रूर मजाक ही कहा जायेगा। भारत के इस वीर पुत्र ने अपने ओजस्वी भाषणों से उत्तर भारत की जनता में राष्ट्र की बलिवेदी पर मरमिटने की जो उत्कण्ठा तथा जोश जागृत कर दिया था, वह भारत के स्वातन्त्र्य समर का एक अलभ्य किन्तु अमर अध्याय है।

कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफ़िर के देशप्रेम से पूर्ण भाषणों के ओजस्वी तथा व्यापक प्रभाव से भयभीत होकर अंग्रेज सरकार ने पंजाब के सीमा प्रान्त में आपका प्रवेश निषिद्ध कर दिया था। जब देशभक्त कंवर सुखलाल आर्य मुसाफ़िर जनता की मांग पर ब्रिटिश सरकार की आज्ञा भंग कर पंजाब पहुँचे तो आपको आदेश भंग के अपराध में पकड़कर हथकड़ियों और बेड़ियों से बाँधकर अदालत में अंग्रेज न्यायाधीश के सामने उपस्थित किया। उस अंग्रेज न्यायाधीश ने बहुत कुछ पूछने के पश्चात् यह पूछा, "तुम कहाँ के निवासी हो?" उत्तर में यू.पी. प्रान्त का नाम सुनकर वह अंग्रेज बोला, "तुम इतनी दूर से फ्रंट फील्ड में प्रचार करने क्यों आये हो? तुम्हें अपने प्रान्त के आसपास प्रचार करने के लिए कोई स्थान नहीं मिला?" यह सुनकर कुंवर जी ने न्यायाधीश से पूछा, "साहब, आपकी जन्मभूमि कहाँ है?" इस प्रश्न के उत्तर में 'इंगलैण्ड' का नाम सुनकर कुंवर जी ने कहा, "साहब, आप सात हजार मील की दूरी से यहाँ अपना प्रभुत्व जमाने आ पहुंचे हो, क्या आपको शासन करने के लिए इंगलैण्ड के आसपास कोई और देश नहीं मिला था? जब आप इतनी दूर से यहाँ राज्य करने आ सकते हैं, हम कुछ सौ मील की दूरी से अपने ही देश में हमारे प्रचार करने पर आपको दर्द क्यों होता है?" यह करारा उत्तर सुनकर क्रोध से भरकर उस अंग्रेज न्यायाधीश ने पुलिस को कहा, "यह बहुत बदमाश तथा गुस्ताख है, इसको ले जाकर तुरन्त जेल में डाल दो।"

बन्धुओ! जिसके राज्य में सूर्य भी नहीं छिपता था, ऐसी विदेशी सरकार के प्रतिनिधि अंग्रेज न्यायाधीश के समक्ष दिये गये उक्त निर्भीक उत्तर से आने वाली विपत्तियों के पहाड़ की आप स्वयं कल्पना कर सकते हैं। इसी विशुद्ध तथा प्रबल देशप्रेम के कारण पुलिस के डंडे, लाठियों, कोड़ों की मार, जेलों के गले-सड़े भोजन, तंग, अंधेरी तथा गन्दी कोठरियों के निवास तथा अन्य अनेक यातनाओं के कारण कुंवर जी का शरीर जीवन के अन्तिम भाग में हड्डियों का एक कंकाल मात्र शेष रह गया था।

बन्धुओ! यह तो एक बानगी थी जो मैंने आपके सम्मुख प्रस्तुत की है। ऐसी न जाने कितनी और कैसी यातनायें आर्यसमाज के अनगिनत वीरों ने झेली है उनका वर्णन करना असम्भव नहीं तो कठिन आवश्य है।

भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के क्षेत्र में आर्यसमाज ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है उसका संक्षिप्त विवरण मैंने इस लेख में दिया है। भारत के राजनैतिक उत्थान एवं पुनर्निर्माण में सर्वाधिक सहयोग देने के बावजूद भी आज के इतिहास के ग्रन्थों में तद्विषयक प्रकरण में आर्यसमाज के कार्य अनुरूप महत्त्वपूर्ण श्रेय नहीं दिया जाता है, जो कि दिया जाना चाहिये। इसके निम्न कारण हो सकते हैं-

1. आर्यसमाज के इन राजनैतिक उत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्यों से इतिहासकारों का अनभिज्ञ होना और आर्यसमाज के इतिहासकारों द्वारा अपने इतिहास का प्रचार-प्रसार न कर पाना।
2. आर्यसमाज के सुधार कार्यों, सिद्धान्तों, मान्यताओं एवं गतिविधियों से वैमनस्य होने के कारण द्वेषभाव से जानबूझकर इन गौरवपूर्ण कार्यों का वर्णन न करना।

क्रमशः पृष्ठ 16 पर......

महात्मा गान्धी तथा आर्यसमाज

□ आनन्ददेव शास्त्री (पूर्व प्रवक्ता संस्कृत) दिल्ली सरकार

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को तंग करने के लिए एक नया कानून बनाया कि प्रत्येक भारतीय को (चोर डाकुओं की तरह) अपने दोनों हाथों की दसों अंगुलियों के निशान कार्यालयों में देने होंगे। यह सुनकर गान्धी जी ने वहाँ के भारतीयों का एक संगठन बनाया तथा सबसे निशान न देने की प्रतिज्ञा ली तथा सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। तब बहुत से लोगों की कई-कई महीनों तक सजायें हुईं। गान्धी जी को दो महीने की जेल हुई। तब जेल में ही अंग्रेज अधिकारी गान्धी जी से मिले तथा गान्धी जी से सत्याग्रह वापिस लेने की प्रार्थना की। गान्धी जी ने बिना मांग पूरी हुये तथा लोगों से सलाह लिये सत्याग्रह वापिस ले लिया तथा चारों अंगुलियों का निशान न देने के लिये सत्याग्रह किया था उस पर ध्यान न देकर अंग्रेजों के कहने से सर्वप्रथम स्वयं दसों अंगुलियों के निशान देकर आये। जब लोगों ने गांधी जी को इस बात के लिए घेर लिया तब गान्धी जी बोले, 'यदि मुझसे जबरदस्ती अंगुलियों के निशान लिये जाते तो यह अन्याय था, परन्तु अब मैं स्वेच्छा से निशान देकर आया हूँ, यह सत्याग्रह है।'

इस प्रकार गान्धी जी ने स्वयं सत्याग्रह करवाकर लोगों से धोखा किया तथा सत्याग्रह एवं सजाओं का कोई परिणाम नहीं निकला। गान्धी जी की इस धोखाधड़ी से वहाँ के पठान इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने गान्धी जी के सिर पर कई लाठियां मारी तथा नीचे गिरने पर उनको लातें भी मारी, यदि पुलिस उन्हें नहीं बचाती तो उनकी मृत्यु भी हो सकती थी। (दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह, पृ० 216, लेखक-गान्धी जी)

गान्धी जी ने आत्मकथा में लिखा है-

(1) जो तेरे दायें गाल पर तमाचा मारे, तू बायां गाल भी उसके आगे कर देना। (आत्मकथा, पृ० 96 पर)

(2) हिन्दुस्तान की सम्पूर्ण उन्नति ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर ही रहकर हो सकती है। (पृ० 109)

(3) गान्धी जी अन्याय के विरोध को भी हिंसा कहते थे। (गान्धी, लेखक-हंसराज, पृ० 113)।

(4) अपने ऊपर अपना राज ही स्वराज है। यदि मैं अत्याचार को सहन कर लूँ तो वह आत्मबल है। (आत्मकथा)

(5) गान्धी जी की सम्मति में पति-पत्नी का मिलन भी विषयभोग है।

(6) देश का राजा गोरा है काला, सत्याग्रही को इस बात से कोई सरोकार नहीं।

(7) खून-खराबी से देश को आजाद करना हिन्दुस्तान की पवित्र भूमि को राक्षसी बनाना है। खून हमें अपना करना चाहिये। खून खराबी करके जो लोग राज्य प्राप्त करेंगे, वे देश को सुखी कभी नहीं बना सकते।

(8) जो लोग मदनलाल ढींगरा के द्वारा कर्जनवायली की हत्या को स्वतन्त्रता के लिए लाभप्रद मानते हैं, वे लोग भूल में हैं। (गान्धी, लेखक हंसराज, पृ० 121)

पाठक स्वयं देख सकते हैं कि गान्धी जी के विचार कितने भ्रामक हैं।

गान्धी जी 45 वर्ष की आयु में 18.07.1914 को अफ्रीका से भारत रवाना हुए। बम्बई पहुँचने पर शान्ताक्रुज में उनका शानदार स्वागत मोहम्मद अली जिन्ना की अध्यक्षता में हुआ। वहाँ से गान्धी जी पूना तथा मद्रास गये। दक्षिण अफ्रीका से गान्धी जी एक टोली साथ लेकर आए थे उस टोली के साथ गान्धी जी गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के वार्षिकोत्सव पर गये। वहाँ स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गान्धी जी का स्वागत किया तथा उन्हें 'महात्मा' की पदवी भी दी। वहाँ से गान्धी जी हरिद्वार के कुम्भ के मेले में गए तथा वहाँ कैम्प में कुछ दिन ठहरे।

स्मरण रहे कि जब दक्षिण अफ्रीका में गान्धी जी का आन्दोलन चल रहा था, तब गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों ने हरिद्वार में निर्माणाधीन दूधियाबांध में सर्दियों के समय पत्थर तोड़ने का ठेका लिया था तथा पत्थर तोड़कर उसकी मजदूरी से प्राप्त पांच हजार रुपये गान्धी जी की सहायता के लिए दक्षिण अफ्रीका भेजे थे।

गान्धी जी के साथ आई टोली को अहमदाबाद के पास साबरमती आश्रम बनाकर बसाया गया। इस आश्रम के

लिये लोगों ने मुक्तहस्त से दान दिया। गान्धी जी को राष्ट्रपिता की उपाधि कम्युनिष्ट पार्टी के महासचिव पूरणचन्द जोशी ने दी थी। 1915 में कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में हुआ, गान्धी जी वहाँ अपनी टोली के साथ पहुँचे परन्तु गान्धी जी की उपस्थिति पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

1916 के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में भी गान्धी जी को किसी ने नहीं पूछा।

चम्पारन सत्यागह-लखनऊ में गान्धी जी से भेंट चम्पारन (बिहार) के राजकुमार शुक्ल से हुई। यह व्यक्ति चम्पारन के पीड़ित किसानों का प्रतिनिधि था। तब गान्धी जी राजकुमार शुक्ल के निमन्त्रण पर चम्पारन, मोतिहारी (बिहार) गये। चम्पारन में अंग्रेज जमींदार वहाँ के किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराते थे। जो ऐसा नहीं करता था उस पर भयंकर अत्याचार करते थे। गान्धी जी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि पांच-छह नेताओं के साथ चम्पारन गये थे। उनके वहाँ पहुँचते ही कलेक्टर ने उन्हें जिला छोड़ने का आदेश दिया। चम्पारन न छोड़ने पर गान्धी जी की अदालत में पेशी लगी। गान्धी जी को अदालत में लाने की बात सब जगह फैल गई तथा वहाँ इतने लोग इकट्ठे हो गये कि प्रशासन को लोगों को काबू में करने के लिए गान्धी जी की सहायता लेनी पड़ी। गान्धी जी का मुकदमा बिना ही सजा के समाप्त हो गया तथा गान्धी जी ने अपमानजनक शर्तों पर समझौता कर लिया तथा मुफ्त में वाहवाही लूटी। किसानों पर जो टैक्स लगाया गया था, उस पर से चौथाई हिस्सा कम किया गया। इस प्रकार इस समझौते से किसानों को कुछ हाथ नहीं लगा। इस प्रकार गान्धी जी का प्रथम भारतीय सत्याग्रह असफल रहा। (गान्धी बेनकाब, लेखक-हंसराज, पृ० 147)

अहमदाबाद सत्याग्रह-अहमदाबाद (गुजरात) में मिल मालिकों ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सस्ते मजदूर भर्ती कर लिये थे। युद्ध के बाद मिल मालिकों ने उस सस्ती मजदूरी में भी कटौती कर दी। तब गान्धी जी के नेतृत्व में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। तब गान्धी जी ने इसके विरुद्ध उपवास की घोषणा कर दी। तब मिल मालिकों ने बातचीत करना ही श्रेयस्कर समझा तथा गान्धी जी को मध्यस्थ बनाकर समझौता कर लिया। किन्तु इस समझौते में भी मजदूरों को कुछ न मिला। केवल थोड़ी-सी कटौती कम की गई। शेष कटौती पूर्ववत् विद्यमान रही। इस प्रकार गान्धी जी ने मजदूरों को बेवकूफ बनाकर मुफ्त में वाहवाही लूटी। (गान्धी बेनकाब, लेखक-हंसराज, पृ० 148)

खेड़ा आन्दोलन (सत्याग्रह)-खेड़ा गुजरात का एक जिला है। 1917 में वहाँ वर्षा अधिक होने से फसलें खराब हो गई। किसानों ने लगान माफ करने के लिए कलेक्टर से निवेदन किया। कलेक्टर ने किसानों के निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब किसान गान्धी जी के पास गये। गान्धी जी के कहने पर भी जब कलेक्टर ने ध्यान नहीं दिया तब गान्धी जी ने किसानों से शान्तिपूर्वक सत्याग्रह करने की अपील की। तब गिरफ्तारी हुई। किसानों को सजाएँ हुई। तब सरकार ने गान्धी जी से मिलकर समझौता कर लिया। इस बार भी समझौते में किसानों को बेवकूफ बनाकर वाहवाही लूटी गई। समझौते में निर्णय हुआ कि यदि बड़े किसान छोटे किसानों का लगान भर देंगे तो छोटे किसान का लगान माफ हो जायेगा। गान्धी जी ने इस समझौते को भी अपनी विजय के रूप में प्रचारित किया जबकि सत्याग्रह का परिणाम शून्य था। (गान्धी बेनकाब, लेखक-हंसराज, पृ० 154)

प्रथम विश्वयुद्ध के समय गान्धी जी ने अंग्रेजों से मिलकर यह निश्चय किया कि कांग्रेस अंग्रेज सरकार का युद्ध में सेना भर्ती आदि में सहयोग करेगी तथा बदले में अंग्रेज युद्ध जीतने के बाद भारत की जनता को औपनिवेशिक आजादी देगी। इस समय नेताजी सुभाषचन्द्र ने गान्धी जी को ऐसा न करने के लिए निवेदन भी किया था, किन्तु गान्धी जी अपनी जिद्द पर अड़े रहे। यहाँ भी गान्धी जी अहिंसा की मान्यता दोगली सिद्ध हुई। एक तरफ तो गान्धी जी की क्रान्तिकारियों की हिंसा को पाप समझते थे, वहीं दूसरी तरफ युद्ध लड़ने के लिए भारतीय युवकों को सेना में भर्ती होने की प्रेरणा दे रहे थे। क्या सैनिक सत्याग्रह के द्वारा शत्रु को मारते हैं। यह हिंसा पाप क्यों नहीं थी।

युद्ध जीतने के बाद अंग्रेजों ने भारतीयों को कुछ शासन सुधार की बजाय हाईकोर्ट के जज 'हर हिडले रोलट' की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की, जिसको कि बंगाल तथा पंजाब के क्रान्तिकारियों के षड्यन्त्रों की जांच-पड़ताल कर, उनके दमन के लिये सलाह देनी थी।

श्रावणी का अपना महत्त्व

❑ डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह, चन्द्रलोक कॉलोनी, खुर्जा, मो० 8979794715

श्रावणी पर्व का अपना ही महत्त्व है। वैसे तो श्रवण (श्रावणी) का सीधा-सा अर्थ सुनने से है। वर्ष के बारह माह में एक माह सावन अर्थात् श्रावण का होता है, जिसमें

महिलाएँ झूला डालकर झूला करती हैं और गीत गाती जाती हैं।

आर्यों में श्रावणी का स्थान अलग है, जो कि वैदिक काल से अर्थात् प्राचीन काल से चला आ रहा है। हम देखते हैं कि भारत के तीर्थ स्थान अधिकांशतः नदियों के पास स्थित हैं अयोध्या, प्रयाग, हरिद्वार, मथुरा, ऋषिकेश, उज्जैन, शुक्रताल, कर्णवास, राजघाट, गया, पुष्कर आदि आज इनका रूप कुछ भी हो प्राचीन काल में यहाँ आश्रम व गुरुकुल थे जहाँ ऋषि-महर्षि तथा विद्वान् लोग रहते थे। नालन्दा व तक्षशिला विश्वविद्यालय आज भी जाने जाते हैं। यहाँ नागरिक विशेष अवसरों पर जाते थे। स्नानादि कर ऋषियों के प्रवचनों का श्रवण करते थे। वेद के ज्ञान की यहाँ सदैव वर्षा होती रहती थी। सभी जन यहाँ वेद ज्ञान सुनकर अपने आपको धन्य समझते थे कालान्तर में वेदज्ञान का प्रवाह अवरुद्ध हो गया और अब मात्र मेले के रूप में भीड़ जाती है और चली आती है। कारण महाभारत युद्ध के पश्चात् वेदप्रचार का प्रवाह रुक गया अनेक मत मतान्तर उत्पन्न होते गए वेदविरुद्ध मत खड़े हो गये। वाममार्गियों व पुराणों की कपोल कथाओं से और हानि हो गई।

आज हमें श्रावणी पर्व के महत्त्व को समझने की आवश्यकता है। सावन मास में वर्षा की रिमझिम-रिमझिम बूंदें गिरती रहती हैं और ज्येष्ठ मास के तप्त देह पर पड़ते ही शीतलता प्रदान करती हैं। उसी प्रकार जब हम वेदकथा का श्रवण करते हैं तो हमारे मन-मस्तिष्क को तृप्ति मिलती है। विशेष रूप से आत्मा का भोजन ज्ञान है और वह ज्ञान वेद में मिलता है। प्राचीनकाल में वेदज्ञान के श्रवण का विशेष महत्त्व था।

जब हम आचमन करते हैं इन्द्रिय स्पर्श करते हैं, दाहिने हाथ की अनामिका से जल का वाक्, प्राण (नासिका), चक्षु, श्रोत्र, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, बाहु व करतल पर स्पर्श कराते हैं। परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे सर्वरक्षक परमात्मन्! आपकी कृपा से मेरी वाणी और रसना जीवन भर ओजस्वी व स्वस्थ रहें। प्राणों में जीवन शक्ति बनी रहे। नेत्र की ज्योति बनी रहे। कर्णों की श्रवण शक्ति बनी रहे। हे सुखस्वरूप भगवन्! मेरी नाभि, मेरा हृदय, मेरा कण्ठ, मेरा शिर, मेरी दोनों भुजाएं और हाथ की हथेली तथा उसका पृष्ठभाग सभी अंग सुदृढ़ यश और बल से युक्त हों।

इसी प्रकार मार्जन मन्त्र में परमात्मा से अंगों की पवित्रता हेतु प्रार्थना करते हैं, शरीर के अंगों पर जल के छींटे लगाते जाते हैं। जल के इन अंगों पर स्पर्श से व्याकुल इन्द्रियों को शीतलता मिलती व पवित्रता के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते जाते हैं। उधर वर्षा की बूंदें हमारे शरीर व मन को शान्ति प्रदान करती है।

अब ऐसे में जहाँ छोटी-छोटी बूंदों से तप्त शरीर को ठण्डक मिलती है, वहाँ यदि खुले मैदान में वृक्ष के नीचे वेदकथा हो रही हो तो आत्मा को भी वैसे ही तृप्ति होती है, ऐसे में वातावरण सुरम्य हो जाता है।

प्राचीन काल में ऋषि-मुनि पर्वतों की कन्दराओं से निकलकर मैदानी भाग में जब चतुर्मास अथवा वर्षा ऋतु होती थी तब पर्वतों व वनों से ग्राम और नगर महानगर के क्षेत्रों में आकर उपदेश किया करते थे। नागरिक उन ऋषि-मुनि साधु-सन्तों का भोजन वस्त्र एवं स्थान देकर सत्कार व सम्मान करते थे। श्रावण मास में स्थान-स्थान पर वेदोपदेश से समस्त प्रजाजन लाभ उठाते थे।

श्रावण मास में वेद कथा व सत्योपदेश से अधिक से अधिक जन लाभ उठाते थे। उसका एक कारण भी था कि चार माह तक वर्षा होने से चारों ओर नदी, नाले, सरोवर पानी से भरे होते थे। रास्तों में पानी भर जाता था। आवागमन बन्द रहता था। अतः व्यापारी लोग खाली रहते थे, खेत खलिहान पानी से भरे होने के कारण कृषकों के पास भी समय होता था। कोई कार्य नहीं चल पाते थे, श्रमिक भी खाली रहते थे और इन चार मास में युद्ध भी नहीं होते थे। अतः प्रजाजन के पास वेदकथा श्रवण के लिए उपयुक्त

क्रमशः पृष्ठ 16 पर......

जीवन का प्रथम प्रश्न

❑ इन्द्रजित्देव, 9466123677

कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि। नासिका के आगे हाथ रहने का अर्थ यह है कि हे बालक! जब तक तेरे श्वास चलेंगे, तब तक तुम यह स्मरण रखना कि मृत्यु तुम्हें मार नहीं सकती। तू और प्रश्न हल कर पाए अथवा न कर पाए, ये कार्य अवश्य करना कि तू जीवन भर स्वयं को खोजते रहना, याद रखते रहना कि तू स्वयं क्या है। कहीं ऐसा न हो कि–

ख़ुद की न की तलाश बड़ी चूक हो गई,
यूं तो बरसो लगाए हमने सुख की तलाश में।

आत्मा जिस शरीर में रहती है, कई वर्षों तक उसमें रह चुकने के बाद भी उसे यह पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता कि इसमें कितनी अस्थियां, कितनी नाड़ियां, कितनी नसें व कितना भार विद्यमान है तथा न ही हमें यह जानकारी हो पाती है कि आत्मा कैसी है, वह कार्य कैसे करती है, इसका रंग-रूप, कार्य तथा भार है अथवा नहीं–

आत्मा व शरीर का रिश्ता भी अजीब रिश्ता है,
उम्र भर साथ रहे फिर भी परिचय न हुआ।

लोग शरीर के अस्तित्व को स्वीकारते हैं, क्योंकि शरीर साकार वस्तु है, परन्तु आत्मा के अस्तित्व से सहमत नहीं होते। आत्मा शरीर से भिन्न कोई वस्तु है, इसका वर्णन वेद व दर्शनों में उपलब्ध है। परन्तु इनका अध्ययन न करने से बड़े-बड़े आचार्य, संन्यासी, विश्वविद्यालयों के कुलपति, उपकुलपति, प्रोफेसर, उपदेशक व लेखक आदि भी केवल शरीर व भौतिक पदार्थों को ही मानते हैं। ऐसे लोगों के लिए निवेदन है–

'शरीर दाहे पातकाभावात्' (न्यायदर्शन 3.1.4)

अर्थात् शरीर को आत्मा माना जाये या पृथक् चेतनात्मा को न माना जाए तो जीवित व्यक्ति को जलाने पर मनुष्य हिंसा का पाप लगाता है। वह दण्ड को प्राप्त लगता है। वैसे ही मृत शरीर को जलाने की भी पाप लगना चाहिए, दण्ड भी मिलना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता, अर्थात् दण्ड नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि आत्मा जो है, वह शरीर व आत्मा से भिन्न है।

'सव्य दृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात्' (न्यायदर्शन 3.1.7)

अर्थात् बाईं आंख से देखे हुए पदार्थ का दाहिनी आंख से भी ज्ञान होता है। इससे स्पष्ट है कि आत्मा इन्द्रियों से पृथक् है। एक व्यक्ति ने यज्ञदत्त को चण्डीगढ़ में देखा। कुछ दिनों के पश्चात् दिल्ली में फिर देखा। तब कहता है– यह वही यज्ञदत्त है, जिसे मैंने एक वर्ष पूर्व चण्डीगढ़ में देखा था। दोनों स्थानों पर देखने वाला व्यक्ति एक ही है। उसे ही यह अनुभव हुआ। उसके इस अनुभव को 'प्रत्यभिज्ञान' कहा जाता है। किसी भी व्यक्ति की बाईं-दाईं आखों में स्मरण शक्ति नहीं। आंख के माध्यम से देखने वाला तथा स्मरण रखने वाला पृथक् चेतन आत्मा है।

आज मनुष्य अधिकांशतः दुःखी है। आत्मा की उपेक्षा तथा शरीर को ही अपना-आप अहंकार इसी को खिलाने, पिलाने, रिझाने, दिखाने व मनाने के लिए हम प्रयत्नशील हैं। परिणाम आपके समक्ष है। शारीरिक ही नहीं, आत्मिक क्लेशों से भी ग्रस्त मनुष्य इसी दिशा में ही अग्रसर है।

बारह यात्री एक नगर से दूसरे नगर को जा रहे थे। मार्ग में नदी आ गई। नदी पार करने के लिए न तो पुल था, न ही नाव थी। एक बुद्धिमान् यात्री ने समाधान करते हुए कहा–"हम सभी एक दूसरे का हाथ पकड़कर मिलकर पार कर लेंगे।" सबने ऐसा ही किया तथा कुशलता पूर्वक नदी पार कर गए। पार जाकर बुद्धिमान् व्यक्ति ने कहा– "अब गिनती कर लेनी चाहिए ताकि पता चले कि हमारा कोई साथी छूट तो नहीं गया।" उसके साथियों ने कहा– "तुम बुद्धिमान् हो, यह काम तुम्हीं करो।" उसने गिना तो ग्यारह ही व्यक्ति थे, क्योंकि उसने स्वयं को गिना नहीं था। दूसरे, तीसरे व अन्य सबने भी गिना तो भी कुल ग्यारह व्यक्ति ही पूर्वोक्त भूल के कारण गिने जाते रहे। तभी एक अन्य यात्री आ निकला तो उसने पूछा–"तुम दुःखी क्यों हो रहे हो?"

"हमारा एक सहयात्री खो गया है।" पूरी घटना सुनने के बाद उस व्यक्ति ने देखा कि वस्तुतः वे लोग बारह ही हैं। उसने कहा–"मैं यदि खोए हुए तुम्हारे साथी को प्रस्तुत कर दूँ तो?"

क्रमशः पृष्ठ 16 पर......

ज्ञान-कण

- जो तुम कहना चाहते हो उसे पहले करके दिखाओ, तभी कहने के अधिकारी हो सकते हो, तभी संसार उसको सुनेगा व मानेगा भी।

- आस्तिकता समस्त पुण्यों की खान और नास्तिकता ही सभी पापों की जननी है।
- बहुत से गुणों के होते हुए भी जिस व्यक्ति में आत्मश्लाघा का रोग आ जाता है, उसका हृदय राग-द्वेष का घर बना रहता है।
- प्रकृति में पूर्ण शान्ति कहाँ?
- प्रत्येक कार्य को नियम पूर्वक करना चाहिए। नियमितता से मन को सुख और शान्ति प्राप्त होती है। जिसके जीवन में अनियमितता है वह विद्वान्, बलवान एवं धनवान होते हुए भी अपने ध्येय में पूर्ण सफलता नहीं कर सकता।
- लोभ पाप का बाप है।
- कम खाने, गम गाने और कसर खाने में प्रथम कुछ संयम और कष्ट सहन करना पड़ता है, परन्तु अन्त में सुख और आर्थिक लाभ ही होता है।
- शुभकर्मों की उठती हुई भावना को दबाना सत्यधर्म की हत्या करना है। ज्योंही शुभकर्म की भावना उठे उसे कार्यरूप में परिणत कर दें, तभी कल्याण हो सकता है।
- सत्य, सेवा, सादगी, सन्तोष, सदाचार, स्वाध्याय एवं समानता के 'सप्त सुमन' पूर्ण सुख और शान्ति के देने वाले हैं।
- हमारे जीवन में सुख के दिन अधिक होते हैं और दुःख के कम। अधीरतावश हम दुःख के दिनों को याद करके रोते हैं।

सत्य और सेवा

- सत्यमय सेवा ईश्वर की प्रसन्नता का मुख्य साधन है। सेवा ही परमोधर्म।
- सत्य पर चलना तलवार की धार पर चलना है, परन्तु समय सङ्कल्प में बड़ी शक्ति है। धैर्यपूर्वक सत्य पर दृढ़ रहना चाहिए।
- इस पदयात्रा में मुझे अनुभव हुआ कि आत्मशुद्धि का सरल मार्ग निःस्वार्थ सेवा ही है।
- हर परिस्थिति में सेवा का भाव बनाइये।
- सेवा के लिए हृदय में दया होना आवश्यक है। 'दया बिन सन्त कसाई'।
- सेवा से ही मेवा (जीवन-मोक्ष) मिलती है।
- गहराई से विचार करने पर निश्चय होता है कि सत्य अन्त में ईश्वर से मिला देता है।

–सूबेदार करतारसिंह आर्य, गोहानामण्डी (सोनीपत)

श्रावणी और स्वाध्याय...... पृष्ठ 2 का शेष.......

किन्तु स्वाध्याय को न छोड़े। श्रावणी के साथ नए यज्ञोपवीत को धारण करने और पुराने को छोड़ने की प्रथा जुड़ी हुई है। प्रत्येक उत्तम यज्ञ आदि कर्मों के समय नया यज्ञोपवीत धारण किया जाये क्योंकि विभिन्न कर्मों के समय विभिन्न प्रकार से यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है। इसी आधार से श्रावणी पर्व पर यज्ञोपवीत बदलने की प्रथा है। यज्ञोपीवत का आर्यों के संस्कार और कर्मकांड में बड़ा महत्त्व है। यज्ञोपवीत के तीन धागे गले में पड़ते हैं वे पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण आदि कर्त्तव्यों से अपने को बंधा हुआ समझ लेते हैं। यह उपनयन यज्ञोपवीत व्रतबन्ध आदि पद इस संबंध में विशेष महत्त्व के हैं। परन्तु विडम्बना यह है कि वर्तमान समय में स्वाध्याय की प्रवृत्ति घटी है। यहां तक कि अध्ययन के प्रति सम्मान में भी कमी आई है। अध्ययन और पढ़ने में अन्तर और भेद होता है। इन दोनों में स्वाध्याय का स्थान ऊँचा और श्रेष्ठ है। अखबार और पत्र-पत्रिकाओं का उलटना-पलटना पढ़ने की कोटि में आता है। पढ़ना एक प्रकार से सूचना संग्रह करने की प्रक्रिया है। अध्ययन के अन्तर्गत श्रेष्ठ साहित्य, वेद, दर्शन, उपनिषद् और विज्ञान आदि आते हैं जिसमें विषय की गहराई होती है। अध्ययन में मनन-चिंतन का पर्याप्त स्थान होता है, क्योंकि इसके बिना विषय की गहराई में उतर पाना संभव नहीं है। स्वाध्याय में ऐसे साहित्य आते हैं जो हमारे अस्तित्व को जताने बताने के लिए सहायक सहयोगी होते हैं। साहित्य की प्रेरणा से जाने कितने लोगों ने अपने जीवन की धारा को बदल दिया। श्रेष्ठ साहित्य के गर्भ में महापुरुषों का निर्माण होता है। सज्जन और संवेदनशील व्यक्तियों का गठन होता है तथा यह समाज को सभ्य और सुसंस्कृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार ऐसे सभ्य समाज में सत्साहित्य और महापुरुषों का समुचित सम्मान होता है। अतः श्रावणी पर्व पर प्रत्येक आर्य को स्वाध्याय का संकल्प लेना चाहिए।

जिसको खोजा, क्या उसे पाया?

❑ प्राचार्य अभय आर्य, रोहतक

जब से हमने होश संभाला, हम अज्ञात की खोज में विभिन्न आश्रय लेते हैं। 'अज्ञात' इसीलिए कहा है कि आरम्भ में तो हमें पता ही नहीं कि हम 'सुख' की तलाश में हैं। दूसरे, हमें यह पता नहीं होता कि 'सुख' कहां मिलेगा। आरम्भ में हमने इसे माता की गोद में खोजा, लेकिन वह गोद छूट गई। बाद में हमने इसे बचपन के मित्रों में खोजा।

लेकिन यह क्या, युवावस्था में हमारे नए मित्र बन गए। उस समय हमने मित्रों के प्रति समर्पण और हमारे मित्रों के हमारे प्रति समर्पण में इसे खोजा। लेकिन गृहस्थ में आते ही हमारे इस समर्पण का स्वरूप ही बदल गया। युवावस्था में सुन्दर शरीर, सुन्दर वस्त्रों, बढ़ते बल आदि में हमने जिसे खोजा, यह सब भी गृहस्थ के दायित्व में खो गये। दायित्व बोझ तले दबे भी हम इसे अपने बालकों की बालक्रीड़ा में खोजने लगे। यइ भी भुला बैठे कि हम फिर उसी क्रम में इसे तलाश रहे हैं, जहाँ इसे खोते आए हैं।

संगठन में चाहे वह राजनीतिक हो, सामाजिक हो या धार्मिक, हमने जहाँ भी कार्य किया, वहाँ अपने नाम व काम में भी हमने इसे खोजा, लेकिन हमारे सामने ही अन्य ने जब वह स्थान लिया, तो वहाँ से भी हमने इसे खो दिया। अत: यह विचारणीय है कि हमने जिसको खोजा, क्या उसे पाया? यह भी कि जब हमारी प्रवृत्ति ही उसकी खोज की है, तो फिर हमारी दिशा ही गलत थी। हम उसे छूटने वाली वस्तुओं में क्यों खोजें? जिसका अन्त नहीं उस अनन्त में उसे खोजने से ही तो हमारी खोज सार्थक होगी। यही तो उपनिषद् का संदेश है। **'न अल्पे सुखमस्ति'**, जो 'अल्प' है उसमें सुख नहीं है। **'यो वै भूमा तत्सुखम्'** जो भूमा है, असीम है, वही सुख है। अत: वेदोक्त कर्त्तव्य-कर्मों का पालन करते हुए उस भूमा, अनन्त, असीम में सुख खोजने से ही हमारी खोज सार्थक हो सकती है। और भी उपनिषद् में ऐसे संदेश हैं। जब यह विषय मेरे हृदय में स्फूर्त हुआ तो मुझे उपनिषद् का यह सन्देश भी याद आ गया। धन्य है विद्यामार्तण्ड डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार जैसे आर्य विद्वानों को, जिनके भाष्य मेरे जैसे 'जिज्ञासुओं' का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

एकता में अनेकता

संसार में नन्हें से जीव चींटी से लेकर विशालकाय हाथी पर्यन्त सभी जीव सुख और आनन्द की चाहना तथा दु:ख, रोग आदि से बचना चाहते हैं, लेकिन दु:खों से बच नहीं पाते। जैसे कि आत्मा नित्य अर्थात् सदैव रहने वाली है, अनित्य नहीं। यदि आत्मा अनित्य होती तो शरीर उत्पत्ति के साथ आत्मा की भी उत्पत्ति होनी चाहिए। इस दशा में संसार में सभी मनुष्यों की अवस्था एक-सी होनी चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है।

अपने चारों ओर दृष्टि डालें तो दृष्टिगोचर होता है कि संसार में असमानता ही असमानता है। कोई दरिद्र के घर में जन्म लेता है तो कोई सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त घर में, कोई भूखा और नंगा है तो किसी के यहाँ अन्न के भण्डार और वस्त्रों की अधिकता, कोई सुखी तो कोई दु:खी, कोई धनवान तो कोई धनहीन, किसी को सिर छुपाने के लिए केवल आसमान ही है और किसी के पास विलासिता के साधनों से सुसज्जित एक नहीं अनेक कोठी, बंगले, किसी के पास टूटी-फूटी साइकिल भी नहीं और कोई वातानुकूलित कारों, हवाई जहाजों का स्वामी और किसी पर एक समय के भोजन के लिए भी धन नहीं तो कोई अरबों-खरबों का स्वामी।

अपने देश, प्रान्त, शहर, गाँव या मुहल्ले को छोड़ हम समाज की छोटी सी इकाई परिवार की स्थिति पर दृष्टि डालें। दूसरे के परिवार को छोड़कर अपने स्वयं के परिवार को ही देखें-कितनी असमानता है। एक ही माता-पिता की सन्तान हैं। खाना-पीना, रहना-सहना आदि सबको माता-पिता द्वारा एक-सा प्राप्त होता है। एक ही मकान में सभी सन्तान एक साथ रहते हैं। माता-पिता द्वारा सभी का पालन-पोषण समान रूप से किया जाता है। सभी को एक-सा वातावरण प्राप्त है। परन्तु कोई सन्तान किसी रोग से ग्रस्त हो जाती है तो कोई पूर्णरूपेण स्वस्थ रहती है।

पुन: एक ही माता-पिता की सन्तान हैं-कोई श्यामवर्ण, कोई गोरा, कोई सन्तान सुन्दर तो कोई कुरूप। कोई जन्म से दुबला-पतला तो कोई हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला, कोई जन्म से ही विकलांग तो कोई सुन्दर सुडौल अंग से युक्त, कोई बुद्धिमान तो कोई मन्द या साधारण बुद्धि वाला।

माता-पिता द्वारा सभी सन्तानों को शिक्षा का समान अवसर, सुविधायें आदि उपलब्ध कराई जाती हैं। परन्तु कोई पढ़-लिखकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो कोई साधारण

क्रमश: पृष्ठ 14 पर......

शैदा-ए-वतन अपनी हस्ती भी मिटा बैठा

कभी विश्वगुरु कहलाने वाले भारत की जनता को अब फिरंगियों का गुलाम बनकर रहना पड़ रहा था। कहा जाता है कि कीमती चीज वह होती है जिसकी आवश्यकता होती है। ऐसे में जरूरत थी देश को आजादी दिलाने की। उस समय भारत में ऊधमसिंह सरीखे सपूत पैदा हुए जिन्होंने देश की आजादी दिलाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

ऊधमसिंह का जन्म 26 दिसम्बर 1899 को पंजाब के सुनामनगर में टहलसिंह के घर हुआ था। 20 वर्ष की आयु में 13 अप्रैल 1919 को उसने एक ऐसा खौफनाक दृश्य देखा जिससे याद आते ही भारत की जनता की भुजाएं आज भी फड़फड़ाने लग जाती हैं। जलियांवाले बाग में एकत्रित हुए भारतीयों पर तत्काल लैफ्टिनेंट गवर्नर माईकल ओ. डायर के आदेश पर अंग्रेजी सरकार के अधिकारी जनरल डायर ने निहत्थे लोगों पर गोलियां चलवाई। घटनास्थल पर एक कोने में एक अत्तरकौर महिला अपने पति की लाश पर सिर पटक-पटककर रो रही थी इस रोंगटे खड़े करने वाले दृश्य को देखकर ऊधमसिंह का खून खौल उठा और अत्तरकौर को वचन दिया, ''मैं शपथ लेता हूँ कि निर्दोष लोगों की हत्या का बदला अवश्य लिया जाएगा।''

ऊधमसिंह जनरल डायर से बड़ा हत्यारा तो ओडायर को मानते थे क्योंकि आदेश देने वाला तो ओडायर था। ऊधमसिंह ने पक्की ठान ली कि इसे जिन्दा नहीं छोड़ूंगा। सन् 1937 में महान् क्रान्तिकारी ने इंग्लैण्ड जाकर पढ़ाई आरम्भ कर दी लेकिन पढ़ाई एक बहाना था। निशाना तो माईकल ओडायर पर ही था। एक दिन समाचार-पत्र में पढ़ा कि 13 मार्च 1940 को लंदन के केकंस्टन हाल में एक सभा को सम्बोधित करेंगे। ऊधमसिंह ने अपनी पुस्तक के बीच में पिस्तौल रखी और हाल में पहुँच गया। सभा को सम्बोधित कर जब जनरल ओडायर अपना स्थान ग्रहण करने लगा तो ऊधमसिंह ने एक के बाद एक पांच गोलियां ओडायर को मारी और वहीं पर उनकी मृत्यु हो गई। ऊधमसिंह के चेहरे पर मुस्कान थी।

अपने नसीब में अजल से ही ये सितम रखा था।
रंज रखा था मुहिम रखी थी गम रखा था।
किसको परवाह थी और किसमें ये दम था।
ऊधमसिंह वादी-ए-गुरबत में कदम रखा था।

क्योंकि 21 वर्ष बाद अत्तरकौर को दिया हुआ वचन पूरा हुआ। ऊधमसिंह को पुलिस गिरफ्तार नहीं कर पाई थी। चलने लगे तो एक महिला पुलिसकर्मी थी वह दरवाजे पर हाथ फैलाकर खड़ी हुई। ऊधमसिंह ने अपनी सभ्यता और संस्कृति का परिचय दिया कि हमारे देश में पराई महिला को हाथ नहीं लगाया जाता इसलिए मैं आपको कुछ नहीं कहूंगा तब पीछे से पुलिस ने पकड़ा था।

2 अप्रैल 1940 के दिन लंदन में कचहरी में पेश किया गया ऊधमसिंह को सिंहगर्जना करते हुए ऊधमसिंह ने कहा कि मैंने अपनी पूर्व योजना के तहत मारा है, क्योंकि वह जलियांवाले हत्याकाण्ड का मुख्य अपराधी था। मैंने तो छोटा-सा विरोध किया है यह मेरा नैतिक कर्त्तव्य था सो मैंने निभाया है। मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि मुझे 10, 20 या 50 वर्ष की सजा या फांसी हो अदालत अपना वक्त न बर्बाद करे, निर्णय दे और 21 जुलाई 1940 को औल्ड वैली जेल में भारतमाता के सच्चे सपूत को फांसी दी गई।

नहीं याद कि जब हमें कि हम हैं क्या।
तो कैसे बता दें कि हम होंगे क्या।
लेकिन मुझे अहसास है कि जो हम थे अब वो नहीं हैं।
कभी आसमान पर थे जहां के, लेकिन आज पाताल में भी नहीं हैं।

-जगदीश चहल आर्य, आर्य बाल भारती विद्यालय, पानीपत

एकता में अनेकता.... पृष्ठ 13 का शेष......

ही शिक्षा तक पहुँच पाता है। माता-पिता ने अपनी सम्पत्ति बराबर-बराबर सभी सन्तानों को दी है, लेकिन कोई प्राप्त सम्पत्ति में वृद्धि कर और धनी हो जाता है, तो कोई मूल सम्पत्ति को भी स्थिर न रखकर उसे नष्ट कर जीवन भर गरीब ही रहता है। कोई परिवार या समाज में गरीब होकर भी सम्मान पाता है तो कोई धनवान होकर समाज द्वारा उपेक्षित है। वेद में इस अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है-

समौ चिद्धुस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चित्त समं दुहाते।
यमयोश्चित्र समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं प्रणीतः॥

(ऋ०म० 10/सू० 117/मं०9)

अर्थात् दो हाथ समान होते हुए भी समान कार्य नहीं करते, एक माता से उत्पन्न दो गायें भी समान दूध नहीं देती। जुड़वा बच्चों का भी बल बराबर नहीं होता, समान परिवार के भी व्यक्ति समान नहीं होते।

-डॉ० राजबाला आर्या, संस्कृत प्रवक्ता, आर्य कन्या गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, मोरमाजरा जिला करनाल-132046
मो० 9992630351, 9416368719

शिक्षा और विद्या

❑ डॉ० महेश विद्यालंकार

भौतिक उन्नति-प्रगति-विकास और ज्ञान का सम्बन्ध शिक्षा से है। शिक्षा अक्षर ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान, सूचना संग्रह, अच्छे नंबर और डिग्रियां तक सीमित हैं। शिक्षा शारीरिक सुख-भोगों तक सीमित है। विद्या आत्मिक उन्नति परमात्मा चिन्तन और जीवन को श्रेष्ठ एवं पवित्र बनाती हैं। जीवन में धार्मिकता, आध्यात्मिकता, नैतिकता, सदाचार, शिष्टाचार आदि की भावना जागृत करती है। विद्या सुखी, निरोगी, प्रसन्न जीवन की कुंजी कहलाती है। तभी कहा है-'**विद्याविहीनः पशुभिः समानः**' विद्याहीन व्यक्ति पशु के समान होता है। विद्या से ही व्यक्ति विद्वान् बनता है। शिक्षा से तरह-तरह का ज्ञान तो एकत्र हो जाएगा मगर सच्चे अर्थ में आत्मज्ञानी तथा विद्वान् नहीं हो सकता। भारत सदा से विद्या का उपासक रहा है। यूरोप ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत उन्नति की है। मगर जीवन की विद्या और परमार्थ विद्या में पिछड़ गया। विद्या से ही मनुष्य सच्चे अर्थ में मानव बनता और कहलाता है। शास्त्र कहते हैं-'**विद्या सा या विमुक्तये**' सच्ची विद्या वह है जो हमें बंधनों, बुराइयों, दोषों एवं अवगुणों से छुड़ाये। हमारे अन्दर पशुता को हटाकर देवत्व की भावना जागृत करे। जो हमें जीवन का सत्य स्वरूप और सन्मार्ग बताए। सच्ची विद्या का पढ़ना, समझना जीवन का असली सलेबस है। आज स्कूलों, कालेजों एवं विश्वविद्यालयों में भौतिक ज्ञान व शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसी का परिणाम कि आदमी सच्चे अर्थ में इंसान नहीं बन पा रहा है। जिसमें इंसानियत, मनुष्यों के उचित गुण-कर्म-स्वभाव और आकर्षण हो।

'**विद्या धर्मेण शोभते**' विद्या धर्म से बढ़ती-फलती-फूलती और शोभा प्राप्त होती है। विद्या से ही जीवन में Art of living की कला आती है। जीवन में यदि जीवन नहीं तो चाहे कितना भी भौतिक ज्ञान, सुख-साधन, भोगपदार्थ एकत्र कर लें तब भी जीवन अपूर्व तथा अधूरा ही रहता है। शिक्षा Standard of living को बढ़ाती है और विद्या Standard of life को ऊँचा ले जाती है। विद्या धर्मयुक्त जीवन जीते हुए धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तक ले जाती है। यही जीवन का सत्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वर्तमान भौतिक शिक्षा में कुछ पढ़ाया और बताया नहीं जा रहा है। इसलिए वर्तमान शिक्षा विद्या से रहित अधूरी है। वेद का संदेश '**विद्यां च अविद्यां च**' भौतिक ज्ञान के साथ-साथ अध्यात्म विद्या दोनों का समन्वय करके चलो। तभी जीवन जगत् में सुख-शान्ति-प्रसन्नता-विश्वबन्धुत्व की भावना बनेगी। उपनिषद् भी कहती है-'**विद्यया अमृतं अश्नुते**' विद्या से अमृतत्त्व (आनन्द) की प्राप्ति संभव है। शिक्षा से भौतिक सुख-भोग पदार्थ तो मिल जायेंगे मगर सच्चा आत्मा का आनन्द नहीं मिलेगा। सच्चे आनन्द के खजाने का ताला तो आत्मविद्या की कुंजी से ही खुलेगा। जीवन जगत् को जितनी भौतिक शिक्षा (ज्ञान) की जरूरत है, उतनी ही आत्मविद्या की भी आवश्यकता है। तभी वर्तमान समस्याओं, उलझनों, विवादों, दुःखों, कष्टों, अशान्ति आदि का समाधान संभव है। आज शिक्षा बढ़ रही है। जीवन की असली विद्या घट रही है। भारत का जीवन-दर्शन रहा है। शिक्षा-विद्या, भोग, योग, भौतिकता-आध्यात्मिकता, शरीर-आत्मा, प्रभृति-परमात्मा आदि का संतुलन एवं समन्वय करके चलो। तभी जीवन-जगत् सन्मार्ग की ओर प्रेरित रहेगा। भारतीय शिक्षा दर्शन में विद्यार्थी और विद्यालय बोला जाता है जिसका सीधा सम्बन्ध विद्या के साथ है न कि शिक्षा के साथ है। शिक्षा का सम्बन्ध इहलोक के साथ है और विद्या का सम्बन्ध इहश्रेष्ठ जीवन तथा परलोक दोनों के साथ है।

विशेष सूचना

आपका शुल्क समाप्त हो गया है-'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक के सदस्यों से आग्रह है कि जिस माह आपका शुल्क समाप्त हो, कृपया उसी माह में अपना नवीन पंजीकरण शुल्क भेज दें ताकि आपकी सदस्यता समाप्त न हो और आपको 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिकाल गातार मिलती रहे। अपने शुल्क के साथ पत्रिका के लिए वार्षिक शुल्क 200/- रुपये अथवा आजीवन शुल्क 2000/- रुपये। नए सदस्य बनाकर हमें सहयोग प्रदान करें। धन्यवाद।

सम्पादक-'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक, रोहतक

जीवन का प्रथम प्रश्न....... पृष्ठ 11 का शेष....

"तब हम तुम्हें अपना भगवान् स्वीकार कर लेंगे।"

"ठीक है। मैं बारी-बारी तुम सबके मुंह पर चपत लगाऊँगा। पहला व्यक्ति तब एक बोले। फिर दूसरे व्यक्ति के मुंह पर लगाऊँगा तो बोलना दो। इसी प्रकार....।" तदनुसार व्यक्ति ने कार्य किया तो बारी-बारी से एक, दो....बोलते हुए वे बारह तक बोलगए तो वे प्रसन्नता से उछलने लगे।" उन्हें 'खोया साथी' मिल गया था।

"आप तो हमारे भगवान् हो। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद कि आपने हमारे खोये सहयात्री को ढूंढ़ दिया है।"

हम सब यही कर रहे हैं। जीवन यात्रा में हम बारह यात्री चले थे पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, एक मन व एक आत्मा। हमने आत्मा को भुला दिया। ग्यारह से आगे बारहवें आत्म का न ज्ञान है, न ही चिन्ता है। वह खो गई है। इसी कारण अशान्त हैं हम। आत्मा का प्रश्न जीवन का प्रथम प्रश्न है। इसे हल करने के लिए भगवान् की शरण में पूर्वोक्त यात्रियों की भांति हमें भी जाना होगा। अन्य मार्ग नहीं है-**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**

श्रावणी का अपना महत्त्व.... पृष्ठ 10 का शेष....

समय होता था। आज भी जहाँ विकास नहीं है, जल प्लावन से काम अवरुद्ध हो जाते हैं, फिर भी ग्रीष्म के पश्चात् वर्षाऋतु आह्लादकारी (सुहावनी) होती है। एक ओर हल्की-हल्की बूंद ठण्डक करती हो और दूसरी ओर वेद ज्ञान के अमृत पान से आत्मा तृप्त होती हो, उस श्रावणी पर्व से अच्छा क्या होगा? सभी ऋतुओं में अति सुन्दर है, सुहावनी है श्रावणी।

आइये, श्रावणी पर घर-घर वेद की ज्योति जलाएँ, ज्ञान का प्रकाश करें, हर्षोल्लास से इस पर्व को मनायें ताकि कहीं पर भी अज्ञानरूपी अन्धकार न रहे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने जो वेद का डंका बजाया उससे ही दुनिया में सुख व शान्ति स्थापित हो सकती है, तभी दुनिया से असत्य, अज्ञानता, अंधविश्वास, पाखण्ड, अन्याय दूर होंगे। सत्य व न्याय की स्थापना होगी।

आइये, श्रावणी पर्व को नगर-नगर गांव-गांव में चारों ओर हर्ष व उल्लास से मनायें।

आर्यसमाज एवं स्वतन्त्रता..... पृष्ठ 7 का शेष....

3. पद-प्राप्ति, धन-लोलुपता, लोकैषणा आदि स्वार्थों के कारण आर्यसमाज के इन महत्त्वपूर्ण कार्यों की उपेक्षा करना।
4. जनता और विशेषकर शासकों की दृष्टि में सर्वप्रिय बनने के अभिप्राय से आर्यसमाज के महत्त्वपूर्ण पहलू से जानबूझकर आंख मींचना।

देश का कोई निष्पक्ष इतिहासकार इतिहास के अनुसन्धान के प्रसंग में आर्यसमाज के इन कार्यों से अपरिचित यह जाये, यह असम्भव है। यदि है तो उसे इतिहासकार कहना इस शब्द का घोर अपमान करना है। उसकी लेखनी न्याय की तुला कहलाती है, वह अपनी लेखनी से राष्ट्र के स्वर्णिम या धूमिल किन्तु यथार्थ भूतकालीन कार्यों के चित्रण से भविष्य का पथप्रदर्शक होता है अन्यथा इतिहासकार और उपन्यासकार में कोई अन्तर नहीं रहेगा।

माननीय इतिहासकार बन्धुओ! अपने इस क्रान्तिमय स्वरूप को पहचानो, सांसारिक प्रलोभनों से ऊपर उठो। आप लोगों ने आर्यसमाज के गौरवशाली कार्यों का वर्णन न करके अपनी लेखनी, नाम तथा कार्य का अवमूल्यन किया है। स्मरण रखना-**'कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः'** कृतघ्नता का प्रायश्चित्त भी नहीं होता है। महात्मा विदुर ने कहा है-"संसार में सबसे बड़ा पाप और अपराध कृतघ्नता है।"

अतः हमारे राष्ट्र के इतिहासकारो! अभी भी समय है, जागो तथा अपने कर्त्तव्य को पहचानो। आर्यसमाज के गौरवशाली कार्यों का उल्लेख कर अपनी भूलों का प्रायश्चित्त कर लो। आर्यसमाज के साथ न्याय कर अपनी नैतिकता का परिचय दो। आशा करता हूँ कि इतिहासकार होने का दावा करने वाले निष्पक्ष सज्जन भविष्य में अपनी लेखनी की भूलों का परिमार्जन करने का नैतिक साहस दिखायेंगे।

विशेष-इस लेख के लिए मैंने आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री जी की पुस्तक **'स्वातन्त्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान'** से बहुत कुछ प्राप्त किया है। लेखक एवं प्रकाशक का हार्दिक धन्यवाद।

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक समाचार-पत्र की सदस्यता ग्रहण कर तथा धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' को सहयोग राशि भेजकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सहभागी बनिये।

सम्पर्क-मो० 08901387993

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के तत्त्वावधान में सभा वेदप्रचार अधिष्ठाता श्री रमेश आर्य के मार्ग निर्देशन में चल रहे लौटो वेदों की ओर अभियान की झलकियां।

यज्ञ हेतु दान देकर पुण्य के भागी बनें

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा में प्रतिदिन दोनों समय यज्ञ किया जाता है और पर्यावरण शुद्धि के लिए रोहतक जिले के सरकारी, गैर सरकारी विद्यालयों और गांव-गांव में यज्ञ व वेद प्रचार का आयोजन किया जाता है। इस महायज्ञ में आप लोग अपने बच्चों के जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ व अन्य उपलक्ष्यों पर दान देकर पुण्य के भागी बनें। संस्था सदैव आपकी आभारी रहेगी।

यज्ञदान हेतु बैंक खाता

ACCOUNT NAME - ARYA PRATINIDHI SABHA HARYANA
BANK NAME - PNB JHAJJAR ROAD ROHTAK
Account No. - 0406000100426205
IFSC - PUNB0040600
MICR - 124024002

Postal Regn. - RTK/010/2017-19
RNI - HRHIN/2003/10425

प्रेषक :
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
दयानन्द मठ, रोहतक
हरियाणा, 124001

श्री ....

पता ....

....

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि.) के स्वामित्व में मुद्रक, प्रकाशक उमेद शर्मा ने दुर्गेश्वरी प्रिंटर्स के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक से मुद्रित एवं कार्यालय, सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ रोहतक-124001 से प्रकाशित।

- सम्पादक उमेद शर्मा